पाँचवाँ अध्याय

चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं का संरचनात्मक पक्ष

पाँचवाँ अध्याय
चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं का संरचनात्मक पक्ष

भाषा साहित्य की आत्मा है। भाषा का सर्जनात्मक रूप साहित्य में नज़र आते हैं। भाषा की संरचना साहित्य के विभिन्न रूपों के साथ बदलती रहती है। संरचना से तात्पर्य भाषा के रूप और आकार से है। भाषा-संरचना भाषा के विभिन्न तत्वों पर विचार करती है।

चन्द्रकान्त देवताले की कविताओं का संरचनात्मक धरातल आम आदमी और उनके जीवन से जुडा है। उनके संघर्ष, यथार्थ और बेचैनी को रेखांकित करने वाले कवि की भाषा और संरचना कभी सपारबयानी की तरह और कभी चाबुक की तरह वार करती है। कविता को सुपरिभाषेय करने में देवताले की भाषिक संरचना सफल हुई है।

चन्द्रकान्त देवताले के कविता संसार में एक पृष्ठ में समाहित छोटी कवितायें भी है, जैसे नाटक, सुबह (रोशनी के मैदान की तरप), सरहद, रक्तपात, समाधि (पत्थर की बैंच) और बड़ी कविताऐं भी जैसे नागझिरी (पत्थर की बेंच), सवाल - जवाब (अग हर चीज़ में बताई गई थी) हाईपवर नंगे बस्तर को कपडे पहनाएगा आदि। 'भूखण्ड तप रहा है' उनकी लम्बी कविता है, जिसमें फ्लेशबैक शैली के ज़रिए सभी सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को चिन्हित किया है। उनके कविता संग्रहों में निजी संस्मरण से जुडी हुई कविताएँ भी है और आँचलिक

विशेषतायें भरी कवितायें भी। वैचारिकता से अभिभूत उनकी कवितायें पाठकों के सामने रोजमर्रे जीवन की प्रामाणिक दस्तावेज़ बनकर खडी है।

5.2 सांस्कृतिक संकट का प्रक्षेपण और भाषा (भाषा का प्रयोग)

चन्द्रकान्त देवताले की काव्य भाषा समय और संदर्भ के अनुसार कभी तीखा, कभी क्रान्तिकारी कभी व्यंग्यात्मक और कभी वैचारिक स्वरूप अपनाते नज़र आती है। सांस्कृतिक संकट की समस्या की गहराई को पहचानते हुए उन्होंने कविताओं में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिससे पाठकों के मन में अन्तरूनी बेचैनी पैदा हो जाएँ और इस के प्रति उन्हें जागरूक रख सके। अपने सामाजिक दायित्व को निभाते हुए चन्द्रकान्त देवताले समय की आकुलताओं का बारीकी से अभिव्यक्ति की है। हर महान कवि भाषा को नए ढंग से संवारता हैं। भाषा का बिखरा हुआ रूप ही कवि को अपनी मानसिक उथल पुथल और समय की अन्तर्विरोधों को सही ढंग से चिन्हित करने में मदद दे सकता है। इसलिए रचना-प्रक्रिया में डूबते वक्त कवि को ऐसे शब्दों की खोज में लहुलुहान होने की चिंता नहीं होती।

"हथों में होते हैं अर्थ
पारे की तरह
और शब्द रेत की मान्दि
मैं रोपना चाहता हूँ
चारे को रेत में
और फिर रेत को
अपने ही भीतर....."[1]

भाषा प्रयोग में, शब्द चयन में कवि की ईमानदारी इन्हीं पंक्तियों में निहित है। अर्थ पारे की तरह है, शब्द रेत के जैसे। कवि की अरमान है कि अर्थ को शब्द

में रोपना फिर शब्दों को अपने भीतर। क्योंकि शब्दों का चयन कविता में मूल्यवान है। शब्दों का सम्बन्ध हमारी संस्कृति से है, हमारे विचार-विवेक को भी शब्द ध्वनित करते हैं।

वर्तमान युग सांस्कृतिक हमले का शिकार हो रहा है। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद भारतीय संस्कृति को खोखला बना रहा है। सांस्कृतिक तौर पर होने वाले इस परोक्ष आक्रमण में कई भारतीय भी शामिल है। भारतीय संस्कृति के बदहालत के प्रति चिंताकुल होने की नकाब पहनते हुए घूम रहे, बडे-बडे भारतीय निगमों के संचालक, नेता वर्ग, और संस्कृतकर्मियों को कवि खूब पहचानते हैं-

"विडम्बना तो यह है कि अब
दुर्योधन ही करता है चीत्कार-बचाओ-बचाओ
हकीकत तो यह है
कि नंगी है संस्कृति नंगा है दुर्योधन'[2]

उन्होंने तीखी भाषा के ज़रिए भारतीय संस्कृति की बदहालत, सांस्कृतिक हमले में शामिल बेइमान भारतीयों का पर्दाफाश किया है। संस्कृति को नंगा कहते हुए उसके खोखलेपन को और दुर्योधन को नंगा बताते हुए हमलावारों के असली रूप को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं।

धार्मिक क्षेत्र के मूल्य क्षरण को दिखाने के लिए चन्द्रकान्त देवताले ने व्यंग्य का सहारा लिया है-

"मैं सच्चा बना रहता और मर जाता...

x x x x x

x x x x x

यदि धर्म के अड्डे संक्रामक रोगों और

कीटाणुओं से रहित होते"[3]

धर्म के नाम पर होने वाले सभी क्रिया-कलापों का आज गलत प्रचार-प्रसार हो रहा है। नतीजतन कई दुर्घटनायें, आतंकवादी हमले हो रहे हैं। संक्रामक रोग की तरह फैलनेवाले कीटाणुओं से युक्त धार्मिक क्षेत्र की सच्चाई का व्यंग्यात्मक अंकन पाठकों को सचेत कर देता है।

आजकल पैसे की ताकत से न्याय को खरीदना आसन हो गया है। सबनों को अदला-बदली से न्याय के स्वरूप को भी उलट पुलट कर देती है। इसीलिए कवि 'न्याय' को 'बहरूपिया' कहते हैं-

"न्याय उपस्थित होता है बहुरूपिए का चेहरा पहनकर
मौसम को अपने-अपने आइनों में
सत्य को विद्रूप करता हुआ"[4]

पैसे की, अधिकार की ताकत के अनुसार विभिन्न मुखौटा पहनकर सत्य को विद्रूप करनेवाला न्याय वर्तमान समय की नियति है। इसीलिए न्याय को बहुरूपिया कहकर कवि उसके इस चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। न्याय व्यवस्था जो सुव्यवस्थित समाज का अनिवार्य अंग है उसकी अर्थहीनता का पर्दाफाश कवि ने यहाँ किया है।

नव-औपनिवेशिक शोषण का प्रतीकात्मक अंकन चन्द्रकान्त देवताले ने 'सुबह हमसे बाहर से रही थी' कविता में किया है। परोक्ष रूप में संपन्न इस शोषण प्रक्रिया की वास्तविकता को उन्होंने यों दर्शाया किया है-

"व्यास थी बहते हुए पानी के लिए
पानी था तलवार में तना हुआ
नदी थी ताबूत में

ताबुत था नहीं हमारा
कंधे थे हमारे ताबूत को ढोते हुए
पांव थे हमारे
पर चाबुक थे उनके"[5]

उदारीकरण के ज़रिए व्यापार के ज़रिए प्राप्त व्यापार में छूट के कारण कई बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय मिट्टी में जडें जमा रही हैं। भारत की प्राकृतिक संसाधनों की कच्चे माल की निशुल्क खरीदकर यहीं उसको महंगे दामों में बेच डालती हैं। उनके इस षड्यंत्र में फंसकर भारतीय जनता अपनी ही मिट्टी के उत्पन्नों से वंचित हो जाती है। कोककोला, कॉलगेट, बाय जैसी कंपनियाँ इसके उदाहरण हैं। अपने देश की चीज़ों पर हक होने के बावजूद हम उसे प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि वह तलावर में तने हुए पानी की तरह खतरेदार है। चाहे वह भारत में सुलभ हो तो भी कोई फायदा नहीं क्योंकि वह उन साम्राज्यशक्तियों द्वारा बनाये गये ताबूत में (गाट करार) कैद है। ताबूत हमारा नहीं है, फिर भी उसे हमें ढोना पडेगा और दौडाने के लिए यानि नियन्त्रित करने के लिए हमेशा साम्राज्य शक्तियाँ तैयार हैं। हमेशा ब्रान्डेड चीज़ों को खरीदते हुए आधुनिक जीवन बितानेवाली युवापीढी किस तरह इस नव-औपनिवेशीय चाल में फंसी है, उनके नियंत्रण की बागडोर किसके हाथों में है, यह कविता इस पर प्रकाश डालती है।

राष्ट्रीय अफरा तफरी कविता राजनीतिक क्षेत्र के अवमूल्यन का सही दस्तावेज है। जनता और सरकार के आपसी सरोकार से ही उचित और मज़बूत शासन संभव हो सकता है। सत्ता-व्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को उल्लिखित करनेवाली पंक्तियाँ देखिए-

"जनता
सरकार के लिए लाइलाज मर्ज है

और सरकार
जनता के लिए निश्चेष्ट डॉक्टर
कोई कुछ नहीं कर पा रहा
पूरा देश करीब-करीब एक जनरल वार्ड"[6]

सत्ता की निष्क्रियता को सूचित करने के लिए 'निश्चेष्ट डॉक्टर' का प्रयोग किया है। लाइलाज मर्ज शब्द जनता की अनगिनत समस्याओं को सूचित करता है। लाइलाज मर्ज, और निश्चेष्ट डॉक्टर के ज़रिए कवि ने व्यवस्था की वज़नहीनता को दर्शाया है। ऐसी सत्ता जनता के लिए अनुपयोगी है, इसलिए देश की हालत जनरल वार्ड की तरह बन गयी है।

सांस्कृतिक संकट के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करने के लिए प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है जो विषय को और भी तर्कसंगत और सार्थक कर देता है। रोजमर्रों जिन्दगी के शब्दों में नये-नये अर्थ भरते हुए कवि लोगों का ध्यान खींचने में और संघर्ष भरी चुप्पी को तोडकर सक्रिय प्रतिरोध करने में उन्हें सुसज्जित करते हैं।

5.3 शैलीगत विशेषताएँ

कविता के भाषिक सौन्दर्य बढ़ाने में कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग हुआ है। इन शैलियों का प्रयोग कविता में लयात्मकता भावानुभूति और ऐन्द्रिकता लाने में सक्षम है। देवताले की कविता में संवाद शैली, गद्यात्मक शैली, रिपोर्ट शैली, संबोधन शैली जैसे, विषय के प्रभावानुरूप विभिन्न शैलियों को उन्होंने अपनाया है।

गद्यात्मकता

समकालीन कविता में सपाटबयानी का ज़्यादा महत्व है। समकालीन समय की वास्तविकताओं को घटनाओं के गद्यात्मक वर्णन के ज़रिए प्रस्तुत करने से

कथ्य पक्ष का सीधा प्रभाव पाठक पर पडता है। आज की कविताओं में गद्यात्मकता को प्रमुखता मिल रही है। चन्द्रकान्त देवताले ने कई कविताओं में इस शैली का प्रयोग किया है।

> "ईश्वर होता तो इतनी देर में उसकी देह कोढ से
> गलने लगती। सत्य होता तो वह अपनी न्यायाधीश
> की कुर्सी से उतर जलती सलारवें आँखों में
> खुपस लेता। सुन्दर होता तो वह अपने चेहरे
> पर तेजाब पोत अन्धे कुँए में कूद गया होता।"[7]

जीवन में जिन अंधी नीतियों का राज चल रहा है, उसको शब्दबद्ध करने के लिए, ईश्वर सत्य, सुन्दर जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। गद्य की लय को सुरक्षित रखते हुए कवि ने इस कायापलट की सूचना दी है। अमीर और गरीब की खाई इतनीं चौड़ी कि उसे पाटना मुश्किल हो गया है। साधन संपन्नों और साधन हीनों के यहाँ जो बच्चे हैं, उनकी दुनिया अलग है। बच्चों की समान-शिक्षा, स्वतंत्रता, सुरक्षा के वादे अपहास करते हुए दीख पड़ते हैं तो कवि निश्चिंत नहीं रह पाते।

जुगुप्सात्मकता

चन्द्रकान्त देवताले का काव्यारंभ 'निषेध' पत्रिका से शुरू हुआ था। वे अकविता आन्दोलन से काफी प्रभावित भी थे। इसीलिए ही शुरुआती कविताओं में घोर निषेध, अश्लील शब्दों का प्रयोग और व्यंग्य ज़्यादा नज़र आते हैं। 1975 में प्रकाशित उनके 'दीवारों पर खून से' नामक काव्य संग्रह की अधिकांश कवितायें स्वतंत्रता की निरर्थकता पर प्रश्नचिह्न लगानेवाली है। स्वतंत्रता के बाद की स्थिति से अपनी असहमति 'पत्थरों का राजगढ' नामक कविता में वे प्रकट करते हैं।

"सार्वजनिक परेशाबघरों की तरह
सडौध मारते विद्यामन्दिरों में
बोर्ड, डेस्क और दीवारों पर
बनी, खिंची, खुदी
रिन और योनी की आकृतियाँ
इन्हीं में ढूँढते हैं
शोहदे प्रजातन्त्र और भारतमाता"[8]

सांकेतिकता का अपनी असर बेजोड है। सार्वजनिक पेशावघरों के समकक्ष रखकर विद्यामन्दिरों की हालत की सूचना देना बिल्कुल सार्थक है। स्वतंत्रता के बाद की मोहभंग की स्थितियों ने कवि लोगों को ऐसे प्रकोपित कर दिया कि वे ऐसे जुगुप्सात्मक कथनों के ज़रिए समस्या की बीहडता व्यक्त करने पर मज़बूर हो गये। बच्चों के भविष्य के प्रति चिन्तित कवि स्वतंत्रता की झूठी शान पर व्यंग्य करने के लिए अश्लील शब्दों से तीखा प्रहार करते हैं। समय के साथ चलनेवाले कवि ने समस्या के प्रति अपनी निषेधात्मक रवैय्या को यों जुगुप्सात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। उनका विद्रोह, रोष, प्रतिरोध इन्हीं अश्लील शब्दों के ज़रिए उभर आया है। शब्दों के ज़रिए उभर आया है।

चन्द्रकान्त देवताले अपनी स्मृतियों में बसी घटनाओं को आधार बनाकर कई कवितायें लिखी हैं। मोचीराम की याद में, मुठभेड झक्की आदमी से, डिठौना था उसका नम और 'फादर शाल्पा' ऐसी कवितायें हैं। बचपन के एक किस्से को याद करते हुए जाति पाँत और छुआ-छूत की समस्या को यहाँ कवि ने उठाया है-

"नीम के नीचे टार पर बैठकर हजामत बनावते उस लडके को
छोड आया हुँ मैं नर्मदा किनारे बसे एक कस्बे में

.....

.....

काली जिसके जमादार पिता सफाई करते थे टेशन की
और जिसकी पप्पी लेने के कारण पिटाई हुई थी कई बार उस
लड़के की क्योंकि वह बाबू का बेटा था और मना कने पर भी
सौ बार चिपकता था जाकर काली से"[9]

ग्रामीण इलाकों में आज भी मौजूद जाति-पाँत की समस्या को बडे ही भावुक ढंग से कवि याद कर रहे हैं। अपने अनुभवजन्य जगत की वास्तविकता को संस्मरणात्मक शैली में उतारते हुए कवि यह सिद्ध करना चाहते हैं कि बच्चों की दुनिया, कितनी निर्मल पवित्र और शुद्ध है। वर्षों बाद भी गाँव की अनपढ और गंवार जनता में आज भी डूब जाते हैं। आदिम अपराधों के बदलते चेहरे में मौजूद वही भेद-भाव के नज़रिये को कवि यहाँ पुनः स्मरण कर रहे हैं। स्मृतियों के सहारे यह एहसास दिलाने में कवि सक्षम हुए है कि वे आज भी ऐसे ही पशुवत् जिन्दगी जी रहे हैं, जिसका पीछा हम सदियों पहले छुडा चुके हैं। 'मुडभेड झक्की आदमी से' कविता में भी वर्तमान दुनिया की सभी रंगनाजियों को सहते हुए जीने के लिए मज़बूर अपने छात्र से हुए उसके मुलाकात का स्मरण है।

5.3.2 आत्मकथात्मक ढंग

देवतालेजी अपनी कविताओं में कहीं-कहीं आत्मविमर्शन करते हुए नज़र आते हैं। समकालीन समय के आत्मकेन्द्रित मनोभाव से वे खुद ही वाकिफ है। भारतीय संस्कृति मिलजुलकर रहने की नसीहत देती हैं, पर आज के मानव अपने आप में सीमित होते जा रहेहैं। देवतालेजी का भी अनुभव इससे भिन्न नहीं है।

"हाँ! नींबू एक सुबह मैं इसी को मांगने दो-तीन घर गया
जैन साहब, निर्मलाजी, आशाजी के घर तो
होने ही थे, क्योंकि इसके पेड भी है उनके यहाँ
पर हर जगह से 'नहीं है' का टका सा जवाब मिला"[10]

गाँव में जन्मे देवताले जी आपसी सुख दुख बाँटने वाली ग्रामीण संस्कृति के वशीभूत होकर अपने आस-पड़ोस में नींबू मांगने चलता था। अपने में सिमटकर जीनेवाले शहरी लोगों की असली मानसिकता को इन पंक्तियों में दर्शाया गया है।

'इत्ते' अंधेरे में', 'शब्दों के सूखते समुद्र के सामने', 'गाँव तो थूक नहीं सकता था मेरी हथेली पर' जैसी कवितायें भी उनकी ज़िन्दगी के विभिन्न पन्नों को अंकित करती हैं।

5.3.4 संवाद का रूप

समकालीन कविता में संवाद शैली का प्रयोग कथ्य के अधिक स्पष्टता के लिए किया जाता है। संवाद नाटक और एकांकी की प्रवृत्ति है। लेकिन समकालीन कवियों के लिए यह शैली का प्रयोग अर्थ के विभिन्न पहलुओं को दर्शाने का माद्यम है। देवताले भी संवाद शैली का प्रयोग वर्तमान वर्चस्व केन्द्रित समाज की वास्तविकताओं का दर्शाने के लिए की है-

"तुम्हारे घर में क्या कुछ है बचाव के लिए
मैं समझा नहीं किसलिए?
आत्मरक्षा के लिए जैसे बन्दूक....
चौंककर कहता हुँ 'नही'
'तलवार-फरसा-घरिया जैसा कुछ है?'
'नहीं'

'तो लाठी तो होगी है?'
'नहीं यह भी नहीं'
'तो फिर मारे जाओगे बिन पहचान"[11]

वर्तमान समय में आम आदमियों के जीना कितना खतरनाक है, यह इस कविता में दर्शाया है। आजकल विपत्तियाँ न जाने कब, किस रूप में आदमी को खतम कर देगा। कुल्हाडी को प्रतीकात्मक ढंग से कविता में दिखाया गया है। क्रूरता आज मान्यता प्राप्त हो गयी है। उसका दबदबा हर कहीं है। अतः खतरे से घिरे हुए जीवन में साधन जुटाना अनिवार्य हो गया है। कवि इस सचाई से पूरी तरह वाकिफ है।

'सवाल-जवाब' नामक कविता में भी यही वर्चस्व केन्द्रित समाज है जो आम जनता को उनके गुलाम समझते हैं। गाँव की पंजायत में हो रही मुकदमे की सुनवाई में सवाल-जवाब के ज़रिए तत्कालीन समाज की विडम्बनाओं का पर्दाफाश कवि कर रहे हैं-

"रामबाण की तरह होते हैं उनके जवाब-
मौत
मौसम के कारण
बेकारी
जनसंख्या वृद्धि
काहिली लोगों की
भ्रष्टाचार
टके ज़्यादा होने से
अव्यवस्था - अराजकता - अनाचार
झूठ सब विघ्नसन्तोषी है लोग"[12]

सवाल और जवाब को देखते ही उसमें निहित अन्तर्विरोध और विषमताएँ सामने आ जायेंगे। हर जवाब में सत्ता का, अधिकार का रास छिपा है। हर एक सवाल जनता की मजबूरी दिखाता हैं। कवि बहुत ही शालीन, सीधे और सरल ढंग से सवालों और जवाबों के माध्यम से, एक अलग-सी वाक्य संरचना के द्वारा आधुनिक समाज का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। यह कविता देवतालेजी के काव्य कला में निपुण होने का प्रमाण है।

5.3.5 संबोधन व आह्वान

समकालीन रचनाकार अपना विरोध व विद्रोह प्रकट करने के लिए ही प्रायः संबोधन शैली का प्रयोग करते हैं। देवताले जी ने भी भ्रष्ट राजनीतिज्ञों पर अपना प्रतिरोध व्यक्त करने के लिए संबोधन शैली का प्रयोग किया है। कविता में पाठकीय ध्यान आकृष्ट करने के लिए यह शैली सार्थक है।

> "नागरिकों सफेदपोश डाकुओं बडे चोरों की तस्वीरों पर थूको
> और बचाओ अपराधों से गरीब मज़बूरों को
> कायदे जुल्म-सज़ा के यदि नहीं बदलते
> तो तुम बदलो आदत अपनी
> सोचो इस विषय पर सचमुच
> यह विषय कठिन नहीं है।"[13]

देवताले जी के अन्दर जो आग है, वही आज सभी में फैलाना वे चाहते हैं। लाखों करोडों की चोरी करके बड़े-बड़े ओहदे में बैठे सफेदपोश राजनीतिज्ञों के खिलाफ कवि अपना विद्रोह यहाँ व्यक्त कर रहे हैं। वे इन्हें लेकर आगबबूला हो जाते हैं और जन सामान्य से आह्वान कर रहे हैं कि इन्हें बदल न सके तो अपनी आदत

बदल लोनी चाहिए। सामाजिक क्रान्ति को दस्तखत देनेवाली ये पंक्तियाँ संबोधन शैली के ज़रिए प्रतिरोध की सशक्त दस्तावेज़ है।

'एक साबुन घर के लिए कविता में भी कवि समाज के गलत रवैय्ये के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करते हैं। 'नहीं है इयान का महकमा कोई', 'चीख के बारे में', 'यह तो जाते दिसंबर की आवाज़ें है' जैसी कविताओं में भी संबोधन शैली के ज़रिए कवि जन सामान्य को समाज की सच्चाईयों से अवगत कराना चाहते हैं। इसमें वे सफल भी हुए हैं।

5.3.6 रिपोर्ट शैली

प्राचीन काल से ही काव्य-भाषा में नवीनता ढूँढने का प्रयास रचनाकारों ने किया है। प्रौद्योगिकीकरण और तकनीकी विकास के समकालीन युग में समकालीन कवि नई-नई शैलियों के प्रयोग करते हैं। क्योंकि कविता समाज और सामाजिक गतिविधियों से अलग नहीं है। तकनीकों का प्रभाव हमेशा से ही साहित्य पर रहा है। रिपोर्ट शैली में लिखित उनके कविता 'इस चमकदार जनतंत्र में सिर्फ जनता ही का नामोनिशान नहीं' पाठकों के लिए नव्यानुभव है। आज टी.वी चैनलों में घटनाओं का आँखों देखा वर्णन यानी रिपोर्टों का बोलबाला है। आम जनता तक अपने कथ्य पक्ष को पहुँचाने के लिए कवि ने सबसे पोपुलर और सरल शैली का प्रयोग की है।

"देख रहे हममें से भी कई
अपने-अपने घरों में खाते-बतियाते हुए
सुन्दर लडकी ने दागा सवाल
"साफ करके तो आ जायेगा न काम में"
बोली अम्मा एक
"अब का साफ होई

पहले ही साफ कर दिया सरकार
और फिर दूकानदार ने....
"बात जारी रहेगी"
कहकर लड़की ब्रेक में चली गयी"[14]

खबरों की चमकती दुनिया और घटनाओं का आँखों देखा वर्णन इस कविता को मौलिक और नवीन बनाती है। 'अम्मा' जो बात करना चाहती है, उसे पूरे किये बिना ही ब्रेक पर जाना, उनके चाल को दिखाते हैं। असल में यह प्रौद्योगिकी नव-साम्राज्यवाद के अलग स्वरूप है। इन्हीं के प्रति अपना झुकाव दिखाते हुए टी.वी चैनलों पर विज्ञापनों की रंगीन दुनिया कब्जा कर रही है। असल में इस जनतन्त्र के चमक-धमक में आम जनता विस्मृत होती जा रही हैं। सरकारी दूकान से मिली राशन के बारे में रिपोर्ट देने की घटना का प्रस्तुतीकरण इस कविता में हुआ है। मीडिया भी सत्ता और अधिकार के साथ मिलकर कैसी झूठी और दिखावटी सहानुभूति दिखाते हैं यह इस कविता द्वारा साफ होता है। रिपोट शैली में लिखित यह कविता पाठकों से जन-सामान्य की हालात समझाने का निवेदन कर रही है।

5.3.7 व्यंग्यात्मकता

समकालीन कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है व्यंग्यात्मक विद्रोह। गम्भीर समस्याओं की मज़ाकिया ढंग से प्रस्तुति समस्याओं को हल्का नहीं बनाती बल्कि और भी चुभनेवाली बना देती है। इसलिए प्रायः कवि लोग सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं और अराजकताओं की खिल्ली उठाने पर उतर आते हैं। बोलचाल की भाषा में, सरल ढंग से व्यंग्य करते हुए इन्हीं अमस्याओं के खिलाफ अपना विरोध देवतालेजी कर रहे हैं। राजनैतिक नेताओं पर, ही ज़्यादेतर व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग देवतालेजी ने किया है।

"जबकि पेड पर सीधा नहीं चढ सकता रीछ कभी
फायदा उठाती उसका लोमडी चालाक इतनी
नए ज़माने की
खट्ठे अंगूर नहीं होते उसके, मीठे सब
रीछ के पीठ के सहारे मुट्ठी में उसकी"[15]

अपने मतलब के लिए लोगों से काम करवानेवाले नेताओं को पशुओं से तुलना करने के लिए कवि यहाँ व्यंग्यात्मक शैली को अपनाया है। वर्तमान राजनीतिज्ञों की कपटता, चालाकी और सत्ता मोह पर कवि करारा व्यंग्य की है। इसी तरह 'पंत पेशवा शहर में आ रहा है' नामक कविता में राजनीतिज्ञों के वर्चस्व के शिकार बने आम जनता का चित्रण हुआ है। व्यंग्य के ज़रिए प्रतिशोध व्यक्त करती हुई ये कवितायें राजनीतिक संकट के खिलाफ खडी सशक्त हथियार हैं।

5.3.8 आंचलिकता

वर्तमान भारत के लिए आंचलिक भाषा, आंचलिक रहन-सहन आदि अप्राप्य है। गाँवों की निर्मल व शुद्ध हवा, ग्रामीण जनता के निस्वार्थ स्नेह, भाईचारा आदि आज के वैज्ञानिक युग से मिटते जा रहे हैं। चन्द्रकान्त देवताले ने इन्हें पुनः प्राप्त करने या फिर महसूस करने की कोशिश आंचलिक शैलियों में रचित कविताओं में की है। 'नागझिरी', 'बेपोगाँव', 'इस पठार पर', 'बालम ककडी बेचनेवाली लडकियाँ' आदि में अंचलिकता दिखाई पड़ती है।

"क्षिप्रा और महाकाल के इलाके में सुनहरे नागों का लोक है
नागचंपा, महुवे के पेडों और नागफनी लदे
टीलों के बीच तो सोने के लालची
हथियारबंदी दौडे आए सोने की खोज में
और हुआ वही जो होता है"[16]

नागिझरी गाँव में नागों का वास होते थे। शहरीकरण और प्रौद्योगीकरण का हस्तक्षेप ने गाँव के उस अंचल विशेष को खतम कर दिये। कवि उस गाँव के आंचलिक विशेषताओं के पुनः सृजन करते हुए, अंचलिक जीवन में भरे हुए स्निग्धता, महक और निर्मलता का अहसास, पाठकों तक पहूँचाते हैं।

5.3.9 पूर्व-दीप्ति पद्धति

चन्द्रकान्त देवताले के लम्बी कविता 'भूखण्ड तप रहा है।' त्रिभुवन के फ्लेश बैक के जरिए चित्रित हुई है। पूर्व-दीप्ति पद्धति अपनाते हुए कवि यहाँ पुरानी और नयी सभ्यता के बीच का फासला दिखा रहे हैं। त्रिभुवन के ज़रिए कवि वर्तमान और अतीत की झाँकी प्रस्तुत कर रहे है। वर्तमान देश के अन्याय-अत्याचार, शोषण-दमन्, सत्ता षड्यंत्र, पूँजीवादी स्वार्थता, न्याय व्यवस्था के खोखलापन आदि को फ्लेश बैक शैली के ज़रिए देवतालेजी ने उजागृत किया है।

"त्रिभुवन मुडकर कई बार पीछे देखो
-कहा था एक दिन सयाने ने
तब से वह रुक-रुक कर बीच-बीच में
देखता है दूर तक अपने सामने उगे"[17]

कविता का केन्द्र त्रिभुवन है। उनके जीवन के ज़रिए वर्तमान दुनिया की सभी समस्याओं पर देवतालेजी विचार-विमर्श कर रहे हैं। शोषण से मुक्ति पाने की चाह, न्याय के बहरूपिया चेहरा, सरकार के झूठे वादे, व्यवस्था की अमानवीयता और सक्रिय क्रांति के लिए आह्वान आदि इस लंबी कविता में उभरकर आते हैं। आठ भावों में विभाजित यह लंबी कविता समकालीन समय का आईना है।

5.4 बिम्ब योजना

बिम्ब काव्य में संप्रेषणीयता का मुख्य औजार है। बिम्ब शब्द चित्र के समान है। उसे कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिक अनुभवों के आधार पर गढ़ा जाता है। कवि अपने अनुभव जगत की घटनाओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसके लिए वे अपनी प्रतिभा और कल्पनाशक्ति के बलबूते पर पाठक के अन्तकरण को जगाने में सक्षम कई बिम्बों का सृजन करते हैं। विषय को मूर्त और ग्राह्य बनाने में सहायक बिम्ब कविता के भाषिक सौन्दर्य बढ़ाते हैं। समकालीन कविता का विषय जगत हमारे रोज़मर्रा जिन्दगी है। इसीलिए ही समकालीन कविता हमारे आसपास के जीवन से ही बिम्ब ग्रहण कर लेते हैं। चन्द्रकांत देवताले ने भी ऐसे ही बिम्बों का सहारा लेकर मध्यवर्गीय जनता का शोषण, नारी शोषण और साम्राज्यत्व शक्तियों के खिलाफ लड़ाई लडी। डॉ. बी.एफ. शेख के अनुसार "कवि देवताले के लिए बिम्ब और भाषा को लेकर जो सरोकार है, वह सिर्फ उपकरण, साधन, या माध्यम भर का नहीं है, वह जीवनानुभव का पर्याय है। देवताले की समग्र कविता का यही संरचनात्मक ढाँचा है, जो उसके यथार्थ बोध और काव्य भाषा की सही समझ पर आधारित है।"[18]

देवताले की लम्बी कविता 'भूखण्ड तप रहा है' में नये-नये बिम्बों के ज़रिए वर्ग शोषण के यथार्थ को उद्‌घाटित किया है। पूँजीपतियों का शोषण आज के वैज्ञानिक युग में चेहरा बदलते सामने आ रहे हैं। आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बोलबाला है। देश की युवापीढी की बुद्धि का, उनकी काबिलियत का शोषण करके उन्हें अँधेरे में धकेल रहे हैं। लेकिन पैसे की चमक दमक और ऐश्य और आराम की जिन्दगी की चाट में वे अपने शोषण से बेखबर बन गये हैं।

"पर देखता है शाम को वहाँ
मशीनों को अपना खून दे

लौटते हुए पीले-जर्द-लस चेहरे
जो एक अंधेरे से जा रहे हैं
दूसरे अपने अंधेरे में"[19]

मशीन यानी कम्प्यूटरों के साथ काम करने पर उनके चेहरे पीले पड गये हैं, जर्द और लस्त लग रहे हैं। इन्हीं शब्दों में यह जाहिर है कि वह अपने काम में कितना कसा हुआ है। उसकी पूरी शक्ति को निचोडकर उसे बेजान बनाके 'अंधेरे' में छोड दिया। ज़मींदारों के यहाँ काम करके शाम को वापस आ रही कृषक जनता के दृश्य का पुनः आविष्कार इस बिम्ब में है। शोषण की समस्या आज भी ऐसे ही मौजूद है। सिर्फ शोषक का चेहरा बदला है, शोषण नीति नहीं।

देश की बदहालत के प्रति चिंतित झूठे राजनीतिज्ञों का पर्दाफाश 'सिंगपूर जैसा बनाने को बेताब' कविता में देवतालेजी ने की है। एक राष्ट्र की उन्नति के लिए सबसे एहम भूमिका निभानेवाले है उस देश के मेहनतकश वर्ग। उन्हें अनदेखा कर जिस ऐश्य और आराम की ज़िन्दगी का सपना सत्ता वर्ग देखते हैं उसका दृश्यांकन इन पंक्तियों में है-

"सिंगापूर जैसा बनने को बेताब
चाहते बन जाये हवाई पट्टी
सडकें काँच के पत्थरों वाली
पर्यटकों के लिए सितारा होटलें
कारें ठण्डी और महाहाट में भव्य जुआघर
उत्तर आधुनिक खूबियों वाला
एक साथ ठण्डा और गरमागरम"[20]

नेता वर्ग अधिकार की तख्ती पर बैठते ही विदेशी यात्राओं में मग्न हो जाते हैं। देश-विदेश की अत्याधुनिक जीवन-शैली से परिचित होकर वे अपने देश में

भी ऐसी आरामदायक व्यवस्था की स्थापना चाहते हैं। असल में भारत जैसे विकासशील शब्द की हालात से अनजान इन्हीं राष्ट्रनेताओं के असलियत सिंगापूर नगर के दृश्यबिंब के ज़रिए देवतालेजी ने व्यक्त किया है। इतनी उच्चतम भौतिक प्रधान जीवन शैली चाहनेवाले नेता वर्गों की वरीयता की सूचि में भारत के विकास की जगह कहाँ होगी? यह सोचने लायक मुद्दा है।

आधुनिक आत्मकेन्द्रित मानव के संवेदनशून्यता को देवताले जी श्याम को सडक पर चलने वाले एक बच्चे के बिंब के ज़रिए कविता में प्रस्तुत करते हैं-

"....उठाया उसे
सन्तरी ने कान उमेठ
होश - जैसे में आ,
वह पानी-पानी,
कहने लगा बरसात में
फिर बोला बस्ता मेरा...
तभी धक्का दे उसे
फुटपाथ के हवाले कर
जा खडा हो गया सन्तरी अपनी छतरी के नीचे"[21]

बच्चे जो आनेवाली पीढी का प्रतीक है, उनके साथ बदसलूकी करनेवाला सत्तरी पाठकों के मन में चोट पहुँचाता है। बरसात में पानी की मांगने भी काफी सांकेतिक है। यह उसकी बेबसी का प्रमाण है। भूख और प्यास से तडपनेवाले बच्चे का तिरस्कार, संवेदनहीनता की चरम परिणति है। देवतालेजी इस दृश्य बिम्ब के ज़रिए पाठकों को संवेदनशील बनाना चाहते है। असल में संवेदनशीलता की कमी ही ऐसे आचरण का कारण है। संप्रेषणीयता के इस कार्य में यह बिम्बांकन सफल है।

घरेलु औरत के संघर्ष को देवताले जी ने कई बिंबों में प्रस्तुत किया है। स्त्री-समत्व का नारा लगानेाले वर्तमान समाज में ऐसी घटनायें घट रही है जिससे यह पता चलता है कि औरत न कभी स्वतंत्र थी, स्वतंत्र है न कभी स्वतंत्र रह पायेगी। स्वतंत्रता का मतलब अपने पसन्द के कपडे पहने, खाना खाने से नहीं है। बेफिक्र होकर समाज में अपनी ज़िन्दगी जीने की स्वतंत्रता नारी को पूरी तरह अब तक प्राप्त नहीं हुई है। जीवन के हर पडाव में संघर्षरत स्त्री के दर्द को देवतालेजी ने दिखाया है-

"नदी में डूबे आखों-से कमल के फूल
या बरसात में फूटती चिनगारियों-सी
नहाते हुए रोती हुई औरत"[22]

नहाते हुए रोती हुई औरत नारी-संघर्ष का बिम्ब है। औरत अपने दुख अपने में ही सीमित रखना चाहती है। उसके इस चरित्र को व्यक्त करने के लिए कवि नहानेवाली औरत को रोनेवाली चित्रित किया है। अर्थात् उसके आँसु पानी में बह जायेगा और किसी को पता भी नहीं चलेगा कि वह रो रही थी।

इसी तरह उनकी कविताओं में कमरे के भीतर वक्त का ठीक हिसाब रखते हुए शंकी पति की प्रतीक्षा करनेवाली औरत का बिम्ब, सूरज की पीठ पर रोटियाँ पकानेवाली औरत का बिम्ब, और अपने हाथों से अपना चेहरा ढूँढनेवाली औरत का बिम्ब आदि का चित्रण हुआ है। 'भूखण्ड तप रहा है' लम्बी कविता में औरत के शोषण तथा गरीबी की स्थिति को यूँ चित्रित किया है-

"नंगे पैर बटोरती लडकियाँ गोबर
सूद पर सूद नोचते महाजन
कट कर गिरते मांस लोथडों के पेड
औरते निपट नहींपाती उनसे"[23]

'नंगे पैर' साधन हीनों के सही संघर्ष का परिचय देता है, महाजनों की उपस्थिति से उनकी परेशानी और भी बढ़ जाती है। पेडों को काटने के अन्दाज़ में जब मांस लोथडों के कटे जाने का जिक्र किया गया है तो स्थितियों की भीषणता का पूरा का पूरा गुर समझ में आ जाता है।

नष्ट हो रही ग्रामीण संस्कृति के प्रति देवतालेजी आकुल है। प्राकृतिक वैभवों का खोना, गाँव के सादगी भरे रिश्ते, का मिट जाना और सुन्दर पर्यावरण का विषैली बन जाना शहरीकरण का नतीजा है। कवि यहाँ अपने गाँव के याद में उसके बिम्बात्मक प्रस्तुती की है-

"मैं ढूँढता हुँ अपनी आत्मा का आदिम टुकडा
जो टूटकर, बिखर गया है काँसे की झंकार में
जला हुआ अन्न धरती की कोख में गंधाता है
और कांसे का बजता हुआ वह घेरा
पता नहीं कितनी नदियों की गहराई में समाकर सुन्न पड गया है।"[24]

चन्द्रलाल देवताले तमाम मध्यवर्गीय शोषण के खिलाफ लड़ना चाहते हैं। अपने विद्रोह को एक विचार बिम्ब के जरिए, बर्फ 'बर्फ बेअसर' नामक कविता में दर्शाया गया है।

"जीवित लोग
अपनी परछाई को ढूँढने के लिए
बर्फ को आग से पिघला रहे हैं
हंसी पर हंसते हुए
मैं चाकू से आग को हिला रहा हूँ।"[25]

अपनी अस्मिता को बनाफ रखने की चाह एक ओर है तो कवि अनुभव करते है कि यह सहजता से पूर्ण हो जाने वाला उपक्रम नहीं है। इसके लिए संघर्ष के

अनवरत सिलसिले को बनाए रखने की ज़रूरत है। कवि अपने फर्ज़ से पूरी तरह अवगत है अतः हँसी पर हँसते हुए चाकू से आग को हिलाने में लग गया है। अपने स्वत्व को पहचानने और उसके हनन को ध्यान में रखकर किए जानेवाले कदमों को आगे बढने न देने का कार्य वे करते हैं।

कवि का विश्वास यह है कि चाकू से आग को हिलते रहेंगे तो सक्रिय क्रांती संभव है। इसी सक्रिय क्रान्ती ही मुक्ति की राह है। इसलिए ही वे अपनी कविताओं में ऐसे बिम्बों का प्रयोग करते हैं जो उन्हें जगा सके। उनके अन्दर के आग को टटोलने का काम वे करते हैं।

देवतालेजी ने बिम्बों को महज एक उपकरण, साधन या माध्यम के रूप में नहीं, बल्कि अपने जीवनानुभव के पर्याय के रूप में अपनाया है। संवेदनात्मक तौर पर यह बिम्बात्मकता उनकी कविताओं को सार्थक बनाती है।

5.5 प्रतीक विधान

प्रतीक अभिव्यक्ति के समर्थ और सशक्त माध्यम है। प्रतीक के प्रयोग से ज्ञात को नहीं बल्कि अज्ञात ज़्यादा प्रकट होता है। प्रतीक और बिम्ब में भिन्नता है। बिम्ब में शब्दों के रेखाचित्र खींचता है तो प्रतीक वैयंजनिक संकेत मात्र प्रदान करते हैं।

समकालीन कविता में प्रतीक का प्रयोग आमतौर पर आम आदमी की त्रासदी व्यक्त करने के लिए ही हुआ है। कहीं इसका खुलकर प्रयोग हुआ है तो कहीं संयम से। देवतालेजी की कविताओं में प्रतीकों का काफी प्रयोग हुआ है। अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता लक्ष्य करनेवाले प्रतीक उनकी कविता को यथार्थ की ज़मीन पर खड़ा कर देते हैं। उन्होंने अपने दैनिक जीवन से जुडे हुए प्रतीकों का ज़्यादा प्रयोग किया है। उनके प्रतीक परिवेशगत दुनिया के यथार्थ है।

वर्तमान राजनीति में सत्ता मोही, लालची, भ्रष्टाचारी और घोखेबाज़ नेताओं की भरमार है। राजनीति के क्षेत्र में फैली यह अराजकता राष्ट्रीय संस्कृति को संकट की ओर ले जा रही हैं। देवताले जी विभिन्न प्रतीकों के माद्यम से नेतावर्ग के इन्हीं चरित्रों का पर्दाफाश व्यंग्यात्मक ढंग से करते है। 'चीते को जुकाम होने से' कविता में 'चीता' उन सत्ताधारी शोषकों और हिंसक लोगों का प्रतीक है, जो अधिकार के तख्ती पर पहुँचने के बाद भी निर्दय और हिंसक बन जाता है।

"...गद्दी नशीन होते ही भयावह ढंग से
हिंसक हो जाते हैं जब गिडगिडिते हुए मेमने
तो यह तो चीता है
कितना भूखा होह जायेगा
जुखाम ठीक हो जाने के बाद।"[26]

गिड़गिड़ाते मेमने से तात्पर्य है वोट मांगने के लिए आनेवाले नेता लोग। गद्दीनशीन होते ही वह ओर भी भूखा हो जायेगा। अधिकार मोही राजनीतिज्ञों पर करारा चोट पहुँचाने के लिए चीते को प्रतीक बनाया है।

'रोशनी के मैदन की तरफ' कविता संग्रह 1982 में लिखी गई थी। स्वतंत्रता के बाद से तब तक भारत पाँच सरकार देख चुका था। पाँचों सरकारों की जनविरोधी सिद्धान्तों से पूरा समाज थक चुके थे। इसके व्यंग्यात्मक प्रतिरोध देवतालेजी ने 'वो पाँचों और हम सब' में किया है। जनता से वोट माँगकर शासन पर पहुँचकर, जनता के लिए सुख शांती भरी व्यवस्था की स्थापन करने के लिए उत्सुक है नेता वर्ग। लेकिन अधिकार प्राप्त हो जाने के बाद वे जनता को भूल जाते हैं। इसका प्रतीकात्मक चित्रण कवि ने यों किया है-

"हम सबसे उन्होंने मांगी रज़ामंदी-
महल का रास्ता बताया हमने
हमने बिठाया घोडों पर उनको
हमारे घोडों के छिले हुए
पट्ठों पर एड लगाकर
वे गये हमारे लिए
ढूँढने उस मुर्गी को"[27]

'घोडे' यहाँ ओहदे का प्रतीक है और सुख-शांती भरी व्यवस्था का प्रतीक है मुर्गी। जनता ने ही उन्हें 'घोडे' पर बैठने के काबिल बनाया है। उनके लिए गरीबी, भूख और शोषण से मुक्त समाज की स्थापना करने का वादा नेताओं ने किये थे। 'वह सुख की अंडे देनेवाली मुर्गी को खोजने के लिए वे शासन के तख्ती पर बैठे थे। कविता की अगली पंक्तियों में यह साफ हो जाता है कि वे ठीक पाँच साल के बाद मुर्गी के नाम पर आपस में लड़ते वापस आ जाते हैं। अगले चुनाव के समय वे फिर 'मेमना' बन जाएँगे। राजनीति के इस गद्दी-खेल का प्रतीकात्मक अंकन इस कविता में हुआ है।

मध्यवर्गीय परिवार की ज़िन्दगी से देवतालेजी खुद वाकिफ है। उनका जन्म भी मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। मध्यवर्गीय ज़िन्दगी की छटपटाहट, और संघर्ष 'भूखण्ड तप रहा है' नामक लम्बी कविता में नये-नये प्रतीकों के ज़रिए उद्‌घाटित की है।

"सोचता है त्रिभुवन
इनके लिए घर क्यों है अंधेरा
और देखता है आकाश में उडते साँप
जिनकी परछाइयाँ धरती की आँखों में है।"[28]

शोषण आज कभी न खतम होनेवाली प्रक्रिया बन गई है। जनसाधारण का जीवन पहले पूँजीपतियाँ के कारण शोचनीय था। आज नव-उपनिवेशवादी शोषकों के कारण वह और भी बदत्तर हो गया है। इसके बारे में सोचनेवाले त्रिभुवन यहाँ समूची व्यवस्था की प्रतिक्रिया का प्रतीक है। 'अधेरे' से समाज की विवशता, भ्रम दिशाहीनता और असमंजस की स्थिति द्योतित होती है। आकाश में उड रहे साँप वह ज़हर है जो तमाम सामाजिक व्यवस्था को प्रदूषित करता है। इस लम्बी कविता का शीर्षक शब्द 'भूखण्ड' भी समूची व्यवस्था का प्रतीक बनकर उभर आया है। जो शोषकों के पशुतायुक्त व्यवहार और भ्रष्टता के कारण 'तप रहा है'। इस लम्बी कविता में कई जगह आग काली का प्रतीक बनकर आयी है। त्रिभुवन बच्चों को क्रांती की भाषा यूँ सिखा रहा है-

"बच्चों के बीच सिखाता है नई बारहखडी
'अक' अनार का नहीं
देखना तक जिसे नमुमकिन
अ अनाज का है
'आ' आग का है"[29]

क्रान्ति के लिए इस लम्बी कविता में कई जगह मशाल, लाल रंग, जवान और बच्चों को भी प्रतीक बनाया गया है। भविष्य के लिए सुबह, क्षणभंगुरता के लिए चकमक पत्थर, वर्तमान व्यवस्था के लिए पालतू कुत्ते, शिकारी कुत्ते और प्रगति के लिए सीढी आदि उनके द्वारा प्रयुक्त अन्य प्रतीक है। ये सभी वर्तमान व्यवस्था के अमानवीय व्यवहार और भ्रष्टता के खिलाफ उमड रहे सक्रिय प्रतिरोध है। यह भूखण्ड को तपानेवाले सभी अन्यायों के खिलाफ इस कविता में प्रतिरोध दर्ज है। शोषण, मुक्ति क्रान्ति, और उज्ज्वल भविष्य को ध्वनित करनेवाले इन प्रतीकों के कारण पूरी कविता सफल और सार्थक बन गयी है।

'लकडबग्घा हंस रहा है' नामक कविता के लकडबग्घा उस शोषक का प्रतिनिधित्व करता है जो आम जनता को कई तरीकों से शोषित करता है। महाजन, पूँजीपति, जैसे शोषक और कपट राजनीतिज्ञों के साथ-साथ वर्तमान उपभोगी दुनिया में उपस्थित भौगीलीकरण उदारीकरण, निजीकरण और बाज़ारीकरण जैसे नव साम्राज्यत्व वादी औजार भी 'लकडबग्घे' में समाहित है।

"ये तीमारादार नहीं
हत्यारे हैं,
और वह आवाज़
खाने की मेज़ पर
बच्चों की नहीं
लकडबग्घे की हंसी है...
सुनो..."[30]

शोषण के विशाल पंजे को शब्दबद्ध करने के लिए कवि ने हत्यारे और उनकी आवाज़ को खाने की मेज़ तक पहुँचाने की बात की है। शोषण का व्यापन किसी से भी छिपा हुआ नहीं है। मीडिया और विज्ञापन के ज़रिए नव-उपनिवेशवादी ताकतों का हमारी ज़िन्दगी में हस्तक्षेप दरअसल दहशत भरी चुनौती ही है। लकडबग्घे - जो एक जंगली मांसाहारी जानवर है इसका प्रतीक अमानवीय शोषण का चेहरा दिखा रहा है। लकडबग्घे का प्रतीक यह सिद्ध करता है कि हर काल में शोषक के रवैय्ये एक-सा ही रहता है। जनसाधारण के खून चूसनेवाले 'लकडबग्घों' की चेतावनी से लिपटने का वक्त अब आ गयी है।

'बाढ' नामक कविता में कवि को बाहर जाने से बेटियाँ रोक रही हैं। बाहर के 'बाढ' समाज को ग्रसनेवाला आतंक और विपत्ती का प्रतीक है। बाहरी

दुनिया में उथल पुथल मचानेवाले इस आतंक का प्रतीकात्मक संस्पर्श कविता में मिलता है।

"बाहर
हवा के पेट में
पानी बज रहा है,
पानी हवा के कंधों पर
चढ रहा है,
मेरा मस्तिष्क तुम्बी की तरह
पानी में हिचकोले खा रहा है..."[31]

अमरीकी वर्चस्व के चालाक नीतियों से वाकिफ कवि उसे पंचतंत्र की कहानी में चित्रित बाघ के प्रतीक के रूप में उद्‌घाटित किया है।

"पंचतंत्र की कहानी वाले उस बाघ की
जो सदियों से जीवितहै स्मृतियों में
और प्रतीक बन चुका है
विश्वासघाती दानी हिंसक पुण्यात्मकता का"[32]

बाघ की आदत है पीछे से वार करना। उसी तरह अमरीकी साम्राज्यत्व भी समय-समय पर कर्ज या सहायता देते हुए विश्वास जीतकर बाद में हिंसक बन जाते हैं। इसीलिए विश्वासघाती दानी हिंसक शक्तियों के लिए 'बाघ' को प्रतीक बनाया है।

उच्च वर्ग और निम्नवर्गीय जीवन के अंतर व्यक्त करने वाली कविता है 'थोडे से बच्चे और बाकी बच्चे'। प्रतीकात्मक ढंग से थोडे से बच्चों के लिए प्राप्त विपुल जीवन सुविधाओं और ढेर सारे बच्चों के लिए प्राप्त कम सुविधाओं का अंकन है।

"एक मेज़ है
सिर्फ छः बच्चों के लिए
और उनके सामने
उतने ही अण्डे और उतने ही सेब है
एक कटोरदान है सौ बच्चों के लिए
और हज़ारों बच्चे
एक हाथ में रखी आधी रोटी को
दूसरे से तोड रहे हैं"[33]

हम जितने ही सभ्य और संस्कारवान हों, परन्तु इस खाई को बनाए रखने में ही सुख मिलता है। अतः कहीं भी कभी भी इस चौडी और गहरी खाई को पाटने के कदम नहीं उठाते। साधन हीनों और साधन संपन्नों की अलग-अलग दुनिया इस एक ही दुनिया में है। इसको अनदेखा करने का बहाना हम बना सकते है। परन्तु संवेदन शील साहित्यकार ऐसा नहीं कर सकता।

1975 में प्रकाशित काव्य संग्रह है 'दीवारों पर खून से'। भारत में उस समय एक प्रकार की संक्रमण की पीडा से लोग त्रस्त थे। आधुनिक वैज्ञानिक युग से परिचित भारतीय युवा पीढी पुरानी मान्यताओं को बदल डालने की चाह से वशीभूत थी। अतीत से अतृप्त युवापीढी वर्तमान में जीना चाहती थी। लेकिन विडम्बना यह है कि न वे अतीत पर चल पा रही थी और न ही वर्तमान में। युवकों की दुविधाग्रस्तता का जायजा 'अन्त नहीं हो रहा है' कविता में लिया गया है।

"अन्त नहीं हो रहा है
विकलांग ऋतुओं के
दुर्गान्धि - चिह्नों के साथ रंगता जा रहा है
बूढासर्प महकाल के मन्दिर तक

रोती हुई वेश्याओं बिछ गई है
जिनके स्तनों को कुचलती हुई भीड का
चीत्कार ईश्वर के टुकडे बरसा रहा है।"[34]

यहाँ 'बूढा सर्प' पुरानी मान्यताओं के प्रतीक के रूप में आयी है। इन पुरानी मान्यताओं का अन्त नहीं हो रहा हैं, इसलिए वर्तमान पीढ़ी के जीवन को कुचला जा रहा है। वर्तमान युग में भी वह पूरी तरह नहीं घुलमिल पाता और पुरानी मान्यताओं पर वे चलना भी नहीं चाहते। इसके प्रतीकात्मक वर्णन इस कविता में हुआ है।

देवतालेजी के प्रतीक विधान आम आदमी के संघर्ष और विद्रोह को द्योतित करते हैं। डॉ. पी.एफ. शेख के अनुसार "कवि देवताले के प्रतीक भूख गरीबी स्वार्थपरता, भ्रष्टता, मूल्यहीनता, कायरता, आक्रोश, विद्रोह, शोषण, अकेलापन पीडा, अवसाद आदि को अभिव्यक्त करते हैं।"[35]

5.6 फन्तासी का प्रयोग

समकालीन कवियों ने भीषण यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए फन्तासी का प्रयोग किया है। फैन्टसी वास्तव में एक भ्रमात्मक अतिरंजित कल्पना है। सामान्य जीवन में नमुमकिन मानी जानेवाली घटनाओं के ज़रिए फैंटसी की दुनिया बसता है। "फान्टेसी वह तकहीन कल्पना है, जो सबसे ज़्यादा स्वप्न से मिलती है।"[36] आधुनिक जीवन के वास्तविकता इतना भीषण और बीभत्स है, कि कवि अतिरंजकता और नाटकीयता के ज़रिए इन त्रासदियों का चित्रण करते हैं। यह वर्णना पाठक के मन में भ्रम और भय उत्पन्न कर सकते हैं। लेकिन उसके साथ ही यथार्थ का भीषण रूप भी सामने अवतरित हो जाता है।

देवतालेजी की कविताओं में फैन्टेसी की दुनिया का समावेश है। दुर्घटना, घोडे का आलस्य, भूखण्ड तप रहा है, देवी वध जैसी कविताओं में फैन्टेसी का सफल प्रयोग हुआ है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं की वास्तविकता इन्हीं कविताओं में फैन्टेसी के द्वारा चित्रित है।

औरत को देवी माननेवाला देश है भारत। देवी बनाकर उसकी पूजा की जाती है। ग्रन्थों में औरत की महिमा का गुणगान करते रचनाकार थकते नहीं है। शक्ति के बिना शिव को अधूरा मानने की प्रथा हमारे यहाँ विद्यमान थे। ऐसे देश के वर्तमान घटनाओं में स्त्री-जीवन के अलग आयाम नज़र आते हैं। स्त्री शोषण के विभिन्न आयाम आज हमारे समाज में मौजूद है। जैसे बलात्कार, दहेज के नाम पर उत्पीडन, बाल मज़दूरी, मादा भ्रूण की हत्या जैसे अनेक प्रकार के अन्यायों का सामना स्त्री को करना पड़ता है। इस अन्तर्विरोध को फैन्टसी के ज़रिए देवताले जी 'देवी-वध' नामक कविता में चित्रित किया है। इस कविता में कवि देख रहे हैं कि पितृपक्ष की एकादशी के दिन नौ दिन की पूजा के बाद प्रतिष्ठित होने के लिए ले जा रही देवी-प्रतिमाओं से औरत निकल रही हैं।

"मैं ने चाहा चीख चीख कर
यह आँखिन देखी बता दूँ धर्मप्राण जनता को
कि प्रतिमाओं से निकल चल पडी है देवियाँ
थाम लो देवियों को पलक-पाँवडे
रास्ते भर फूल कुंकुम आरती-जयघोष ढोल-ताशे
जिससे जो बन पडे माँग या छीन लो देवियों से"[37]

कवि के आँखों के सामने से निकली औरतों में वेश्या है, डायन है। कविता के अंत में कवि कह रहा है कि-

"सोचने लगा जिन औरतों को
नंगा करके सताया और घुमाया जा रहा है
शायद वे भी पत्थर, मिट्टी सीमेंट की कैद से
आज़ाद हुई होगी"[38]

समाज के दुमटेपन व्यक्त करने के लिए कवि ने यहाँ फैन्टेसी का प्रयोग किया है। स्त्री शोषण आज की ज्वलंत समस्या है। सभी शोषित, दबित और पीडित औरतों में देवी का अंश दिखाते हुए 'देवी-वध' को यहाँ कवि ने फैन्टेसी में उतारा।

'भूखण्ड तप रहा है' कविता का नायक है त्रिभुवन। "वह फैन्टसी के माध्यम से सुदूर अतीत और इतिहास में जाता है और फिर लौटताहै अपने वर्तमान में।"[39] जगह-जगह पर फैन्टसी के कई चित्र इस लम्बी कविता में उपलब्ध हैं। वर्तमान उपभोगी दुनिया के यथार्थ को रेखांकित करते वक्त वे फैन्टसी का सहारा लेते हैं।

"गरुड आकाश मं उड रहे होंगे
आकाश पानी से घिर रहा होगा
और जंगली सुअर अपनी थूथनियों से खोद रहे होंगे
धरती के भीतर गाडी हुई संजीवनी
समय की उस विराट खोखल के भीतर
वे अपनी हथेली पर थूककर
सूरज का इन्तज़ार करते होंगे"[40]

आधुनिक सभ्यता के चकाचौध मानव-जीवन को खोखला और अर्थहीन बना दिया है। यंत्रायुग के यान्त्रिक जीवन के लिए अप्राप्त सूरज की रोशनी के बारे में कवि चिंतित है।

कला के प्रति समर्पित जीवन जीना बहादुरी का प्रमाण है। निरीह और निर्मल व्यक्तित्व ही ऐसा जीवन बिता सकता है। व्यक्ति पर होनेवाले ऐसे आक्रमण को चित्रित करता है, 'दुर्घटना' नामक कविता। बरसों से ही कला के क्षेत्र में राजनीति का हस्तक्षेप होता रहता है। कला और राजनीति दोनों की दिशा विपरीत है। कलाकार को जब राजनीति के आक्रमण का शिकार होना पडता है तो वे अपना सब कुछ खो देता है। अपनी मौलिकता, सर्जनात्मकता, और सादगी पर हो रहे वार को निस्तेज करना उनके लिए लगभग असंभव है। एक कलाकार के आत्मसंघर्ष को, दुर्घटना के ज़रिए देवतालेजी अंकित किया है।

"वह दहाडा-तुम्हारी यह हिम्मत
तभी उसकी जेब में से कुछ और आदमी बाहर निकलने लगे
और सबने मिलकर मेरी मुश्कें बाँध दी
फिर टेटुआ मसकने लगे...
मैं जब तक होश में आया
वे सब जा चुके थे
सिनार के टुकडे मेरे भीतर चिबदा गये थे"[41]

राजनीति का हस्तक्षेप सच्चे कलाकारों के लिए एक चुनौती है। उनके ऊँची उडान को खतम करने के लिए सक्षम है। फिर भी देवतालेजी हार नहीं मानते। 'कोशिश करो', कोशिश करो कहते हुए वे पुनः जाग उठना चाहता है। सत्ता की ओर से मिल रहे इस प्रहार का यथार्थ रूप 'फैन्टसी' में समाकर यहाँ प्रस्तुत है। जेब में से निकलनेवाले सत्ता वर्ग के चमचे कलाकार की आत्माभिव्यक्ति की गला घोंटने लगते हैं। साहित्य जगत के इस भीषण यथार्थ को कवि यहाँ चित्रित कर रहे हैं।

देवतालेजी ने समय की विभिन्न समस्याओं के यथार्थ अंकन के लिए फन्तासी का प्रयोग किया है। स्त्री शोषण, मध्यवर्गीय परिवार की त्रासदी, कलाकार

के आत्मसंघर्ष, जैसे सभी प्रकार के भीषण यथार्थ को अतिरंजनापूर्ण वर्णन के साथ-साथ प्रस्तुत किया गया है। समकालीन दौर के खोखलेपन और निरर्थक स्थितियों और आधुनिक जीवन की संपूर्ण त्रासदियों और जटिलताओं को सार्थक अभिव्यक्ति देने में देवतालेजी ने फन्तासी का सफल प्रयोग किया है।

5.7 मिथक का प्रयोग

मिथक के लिए अंग्रेज़ी में Myth शब्द प्रचलित है। इतिहास में प्रयुक्त बातों को मिथक की संज्ञा देकर समकालीन कवि एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं। हरेक संस्कृति में लोकविश्वासों से जुडे हुए अनेक मिथक है। लेकिन वह मिथक समकालीन परिप्रेक्ष्य में मानवीय पक्षों को उजागृत करते हुए सामने आते हैं। हिन्दु पुराणों में वर्णित ब्रह्मराक्षस के मिथक मुक्तिबोध के लिए अलग ही मतलब रखता है। ऐसे ही राम, द्रौपदी, सीता आदि पुराण के चरित्रों को वर्तमान समय में अलग रूप में पेश करते हैं। डॉ. शंभुनाथ के मत में - "यथार्थ को अधिक गहनता से जानने और व्यक्त करने के लिए कभी-कभी उससे एक खास दूरी अपेक्षित हो जाती है। मिथक इसका सकारात्मक अवसर देता है। यथार्थ और मिथक का रिश्ता तब एक दूसरे के विरोध का नहीं रह जाता।"[40] मिथक इस तरह आधुनिकता के ढाँचे में पिर हो जाता है।

अश्वमेध यज्ञ राम द्वारा पूरी पृथ्वी को जीतने के लिए किया गया था। दुनिया भर को अपनी ताकत का परिचय देने के लिए अपनी राह को निष्कटंक बनाने के लिए इसका सदान हुआ था। वर्तमान दुनिया में आज हर कहीं हत्यारे का राज्य बसा हुआ है। सभी अपराधी लोगों को साथ मिलाकर अश्वमेध यज्ञ करने का मतलब है पूरी दुनिया को अपने कब्जे में करना। आज के हत्याकांड देवतालेजी को

यह सोचने पर मज़बूर करते हैं कि आज का युग क्रूरता का हिंसा का अपराधियों का और वर्चस्व का युग है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए 'अश्वमेध यज्ञ' के मिथक का प्रयोग कवि करते हैं। इस मिथक के सहारे समकालीन सामाजिक जीवन की परिवेशगत सच्चाई उभरकर सामने आयी है। सब पर आधिपत्य जमाने के आधुनिक मानव के स्वभाव पर यह कविता करारा व्यंग्य करती है। आज के आदमी के लिए चाँद और मंगल का कोई अलौकिक वजूद नहीं है। आज मनुष्य चाँद तक पहूँच पाये हैं। धीरे-धीरे सौर मण्डल की सभी सीमाओं को पार करते हुए वे दुनिया की हरेक शक्ति को अपने कब्जे में करने में सफल हो जायेंगे। मनुष्य की इसी आदत को कवि प्रस्तुत कर रहे हैं-

"इधर कम्प्यूटर के परदे पर प्रवेश क रहा है
अश्वमेध का घोडा
जो चीज़ को धुँआ छोड रही उसे इश्वर बताया जा रहा है"[41]

पूरी दुनिया को हराना और बुराईयों पर अधिपत्य जमाना इक्कीसवीं सदी के अश्वमेध यज्ञ का लक्ष्य है। अश्वमेध यज्ञ का वह मिथक उत्तर आधुनिक समय में नये अर्थ में समाहित हो गया है। वर्तमान समय की हिंसा, आतंक, और खौफ आदमी की पूरी दुनिया पर नियंत्रण पा लाने की चाहत की उपज है। प्रभुत्व की यही कामना मानव को दिन-ब-दिन अपराधी बनाकर छोडेंगी। ऐसे अपराधी मानवों द्वारा ही यह 'अश्वमेध यज्ञ' हो रहा है। ताकि उन्हें हराने के लिए, उनके तेज़ रफ़्तार में रोक लगाने के लिए कोई आगे न आ पाये। इसलिए वे अपने घोडे को हर जगह दौडाते हैं। आज की इस निर्मम सच्चाई का प्रक्षेपण इस मिथक द्वारा होता है।

5.8 शब्दों का प्रयोग

चन्द्रकान्त देवताले अपनी कविताओं में नये-नये शब्दों का प्रयोग किया है। वे शब्द कवि और कविता की सामाजिक सरोकार को प्रबल करने में सक्षम हुए है। कवि की बेचैनी, तनाव आशंका, क्रोध और आग को संप्रेषित करने के लिए उचित शब्दों को उन्होंने चुना। इनमें आधुनिक समय के अनुरूप मीडिया विज्ञापन और बाज़ार से जुडे शब्द भी है, लोकभाषा से जुडी हुई शब्दावली भी है और तत्सम, अरबी, देशज जैसे शब्दों का प्रयोग भी है।

5.8.1 मीडिया संस्कृति से जुडे शब्द-प्रयोग

आज का युग प्रौद्योगिकी का युग है। मीडिया का प्रभाव आज जनजीवन पर कुछ ज़्यादा हो रही है। मीडिया संस्कृति की दिखावटी शैली को पहचाननेवाला कवि ने ऐसे शब्दों के ज़रिए युग की जीर्णता को दर्शाया है।

> "बात जारी रहेगी कहकर
> लडकी ब्रेक में चली गयी"[42]

गम्भीर समस्याओं के परिचर्या में भी बातों को बीच में काटते हुए 'ब्रेक' पर चली जाना, मीडिया जगत का तंत्र है। लोगों की उत्सुकता को बनाये रखते हुए, उन्हें अपनी चैनल पर जुडे रखने के लिए हो रही यह चाल आत्मकेन्द्रित मानव-समूह की सही चित्र प्रस्तुत करता है। इस तरह अखबार में छापनेवाला कोई खबर के शीर्षक के समान शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने 'चूर-चूर बिखर रहा माँ का कलेजा' कविता में किया है। इस तरह और भी शब्द प्रयोग है जैसे - अखबरों में छपा खुलासा (इस मामले में बताया गया) अखबार के लिए कहानी गढते (पवित्र स्नान में धर्मनिष्ठ मरण) टी.वी और अखबारों के पिंजरों (क्या हम बैसाखियों की तरह है)

अखबारों के पहले पन्ने पर (दुनिया का सबसे गरीब आदमी) गले तक विज्ञापनों में डूबे अखबारों में (यह विषय कठिन नहीं) जख्मों-धब्बों और काले धंधों को चाक करती छापी अखबारों में (इस चमकदार जनतंत्र में सिर्फ जनता ही का नमोनिशान नहीं) अखबारों के बेशकीमती मशीनों (यहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है) आदि।

5.8.2 बाज़ारू संस्कृति से जुडे शब्द प्रयोग

मुनाफे पर केन्द्रित बाजारू संस्कृति ने मानव-जीवन को किस तरह धनाधारित बना दी, इसकी स्पष्ट सूचना देते हुए चन्द्रकान्त देवताले ने बाज़ार और उससे जुडे हुए शब्दों का प्रयोग किया है। मानव पर ही नहीं बल्कि सभी जीव-जन्तुओं की परछाई तक नजर डालनेवाली बाज़ारू तंत्र को कवि यों प्रकट की है-

"यह वक्त बाज़ार है लेब्रेडोर
तुम्हारी परछाई तक पर
नज़र है खरीदार की"[43]

इस तरह बाज़ार के विभिन्न स्वभाव व्यक्त करने के लिए कई शब्दांशों का प्रयोग उन्होंने की है। जैसे बीहड है 'बाज़ार की घुसपैठ' (सिर्फ पहली पंक्ति) 'अपने उत्तर-आधुनिक ठाटबाट के साथ सजी-धजी बिकती है' (करिश्मे भी दिखा सकती है अब किताबें) 'अगर मैं भी बन जाऊ बिकाऊ' (अपकी तरह बोलने के लिए) 'बाज़ार में बिक रहा है' (हमसे भी कुछ सीखना चाहिए मनुष्यों को) 'सभी घरों में अपने-अपने बाज़ार हैं' (नींवू माँगकर) आदि।

5.8.3 लोक संस्कृति से जुडे शब्द-प्रयोग

लोक संस्कृति सामुदायिक व सामूहिक पहचान से जुडी हुई है। चन्द्रकान्त देवताले ने अपनी कविताओं में लोक-जीवन में जुडे हुए विभिन्न शब्दों का प्रयोग

किया है। जैसे लोक संस्कृति के विभिन्न चिह्न रीति-रिवाज़, त्योहार, विश्वास, वेश-भूषा आदि।

नष्ट होते ग्रामीण संस्कृति को याद करते वक्त कवि को अपने गाँव की एक विश्वास याद आ जाता है। 'हाथों में थूकने' की प्रथा की आचरण लोग इसलिए करते है ताकि उनमें यह विश्वास है कि इस प्रथा की वजह से लोगा आपस में भूलते नहीं, ज़िन्दगी भर याद रहते हैं।

"पैर घूने होते
आजी, मौसी और बुआ मेरी नन्ही हथेली को पकडकर खोलतीं
और उस पर प्यार से थूक देती"[44]

पर्व, त्योहार आदि लोक संस्कृति से जुडे हुए है। जन-जीवन के अभिन्न अंग है। देवी वध कविता में उत्सव के जिक्र उन्होंने की है-

"पितृपक्ष की एकादशी
जब पूरे देश में दूध पीकर अधा रही थीं देवप्रतिमाएँ"[45]

उसी तरह ओर भी कवितायें है जिसमें लोक संस्कृति की झलक दिखाई पडती है। जैसे-

"दक्षिण की तरफ पैर करके मत सोना
वह मृत्यु की दिशा है"[46]

और

"बस्तर के शाल-बनों की छाया में
मांडू-धार की सडक पर
झावुआ की झोपडियों से
अलसाई निकलती हुई"[47]

5.8.4 अन्य शब्दों का प्रयोग

चन्द्रकान्त देवताले अपनी कविताओं में मीडिया, बाज़ारू और लोक संस्कृति जुडे हुए शब्दों के अलावा, तत्सम, अंग्रेज़ी, अरब, उरदू, फारसी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी किया है। विषय की गहराई के अनुसार प्रुक्त इन शब्दावलियाँ कविता की संप्रेषणीयता को और मज़बूत करती है।

5.8.4.1 तत्सम शब्द

संस्कृत भाषा में प्रयुक्त शब्द वैसे ही उनकी कविताओं में कई जगह दिखाई पडते हैं।

1. "कहकर तो गये हैं
   देश और जनता की इज्जत पर
   नही करेंगे सौदा कोई या
   हस्ताक्षर"[48]

2. **भाषा** अब निरापद है
   तुम्हारे भूने हुए इरादे
   और उसके रक्तस्नान चेहरे को देखकर"[49]

3. **बसन्त** उतना नहीं
   असर कर रहा हूँ।"[50]

इन शब्दों के अलावा भाषा, स्मृतियाँ, घोषणा, प्रसाद सर्प, भोजन, ग्रीष्म, प्रतिमा, चन्द्रमा, मुकुट, दर्पण, हस्ताक्षर, प्रजातन्त्र, सम्मान, आकस्मात्, प्रसन्न, उत्साह, भूखण्ड, आकाश जैसे अनेक तत्सम शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है।

5.8.4.2 अरबी शब्द

अरबी भाषा में सबसे ज़्यादा मान्यता प्राप्त वर्तमान युग में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग चन्द्रकान्त देवताले ने रचनायें की है।

1. "अपने खतरनाक **इरादों** से
   दुनिया को तबाह करनेवाला सौदागर"[51]
2. यह **वक्त** वक्त नहीं
   एक **मुकदमा** है या तो गवाही दो
   या हो जाओ गूँगे[52]
3. सिर्फ **तारीखें** नही बदला करतीं समय[53]

साथ ही बरखत्, कबिज़यत, आदमी, फजीहत, शख्स, तहकीकात, जायका, जखम, खिलाफ, दिलचस्पी, मुश्किल, हिदायत, इंसाफ, आवाज़, गनीमत, तरकीब, इलाका, इतमीनान, खारिज, ईमानदार, नफ़रत जैसे अनेक शब्दों का प्रयोग भी कविताओं में मिलते हैं।

5.8.4.3 अंग्रेज़ी शब्द

अंग्रेज़ी भाषा को सबसे ज़्यादा मान्यता प्राप्त वर्तमान युग में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग चन्द्रकान्त देवताले ने की है।

1. "अब तो मस्तिष्क है **कम्प्यूटर**
   के पास भी"[54]
2. "शहीद **पार्क** के पास
   टेम्पो वाले शायद कुछ दिन बाद नहीं कहेंगे"[55]

3. "किसी ट्रक बस, कार या स्कूटर ने
शिकार तो नहीं हुए किसी आन्धाधुन्ध"[56]

इन शब्दों के अलावा डाइनामाइट, म्यूज़ियम, कैंसर, बल्ब, टेलिविज़न, कैलेण्डर, डाक्टर, क्रिकेट, पुलिस, ड्रक, स्कूल, साइकिल, पोस्टर, मैडम, रेडियो, मिनिट, कम्प्यूटर सर्किट हाऊस, जेटयान जैसे अनेक शब्दावलियों से उन्होंने अपनी कविता जगत को संपुष्ट बनाया।

फारसी शब्द : फारसी शब्दों का प्रयोग च. दे की कविताओं में मिलते हैं।

1. ज़िन्दगी की धूप और
छाया के छोटे-छोटे टुकडों को[57]

3. ...चाबुक थे उनके
उनके थे उन्हीं के हाथों में **चाबुक**[58]

5.8.4.4 मराठी शब्द

चन्द्रकान्त देवताले मराठी से कई रचनायें अनुदित भी की है। उनकी हिन्दी रचनाओं में मराठी भाषा के शब्दों को भी उन्होंने अपनाया है।

1. "बहता खून बाडी तक टपकते आया
और **आजी** कपडे धोने के पत्थर पर
पछाड खा गिर गई"[59]

2. वह याद करने लगा उनकी भाषा चेहरे
उनकी आवाज़ - पहले 'श्रीमान' फिर **'डोकरा'**[60]

इसके अलावा - पौष्ठिक, गुपचुपभाजी, कड़वा श्रीमंत जैसे मराठी शब्दों का प्रयोग उनकी कविताओं में उपलब्ध है।

5.8.4.5 उरदू शब्द

चन्द्रकान्त देवताले ने अनेक उरदू शब्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में संदर्भानुसार किया है।

1. इस अंधेरी रात की **नब्ज़** को थामे हुए
   कह रहा हूँ-
   ये तीमारदार नहीं
   हत्यारे हैं[61]

2. **ज़हर** डसा जो भी आता
   था नागसिरी।[62]

साथ ही नन्हा, ज़हर, जिस्म, मौजूद, नक्शा, बुजुर्ग, बस्ती, बेरहम, तब्दील, नसीहत आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

5.8.4.6 हिन्दी शब्द

हिन्दी शब्दों में मुस्कान हमदर्द, छाल, गन्ना आस्पताल, चिडिया, कटोरदानी, तलवार, तितली लपटें रेत टिप्पणी आदि अनेक शब्दों उनकी कविताओं में मिलते हैं। जैसे-

1. "...अग और गुस्से ने मेरा साथ कभी न छोडा"[63]
2. "**पत्थर** की बेंच
   जिस पर रोता हुआ बच्चा"[64]
3. "इधर पत्थरों के रथ **रेत** में
   कवि दर्ज करता है कविता में"[65]

5.9 निष्कर्ष

चन्द्रकान्त देवताले का काव्यारंभ 1952 हुआ था। अर्थात् उनकी भाषिक संरचना अकविता दौर से शुरू हुई थी। कविता की विकास यात्र जिस तरह विभिन्न पहलुओं से गुज़रकर आगे बढी उसी तरह उनकी कविताओं की भाषिक संवेदना भी।

चन्द्रकान्त देवताले मार्क्सवाद दर्शन से प्रभावित थे। इसीलिए उनकी कविता श्रमिकों और शोषितों के साथ खडी है। उनके लिए शब्द एक साथ चाकू और आग का फूल है। वे अपनी कविताओं के ज़रिए शोषितों के लिए उनकी लडाई लडते हैं। उनके संघर्ष को रेखांकित करके न्याय दिलाने की कोशिश में वे संलग्न है। अपने सामाजिक सरोकार को निभाने के लिए वे विभिन्न शैलियों के साथ, नये-नये बिम्बों-प्रतीकों मिथकों के साथ फन्तासी की दुनिया की रचना करते हुए समकालीन समय में अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं।

गद्यात्मक शैली का प्रयोग 'थोडे से बच्चे बाकी बच्चे' नामक कविता में, जुगुत्सात्मक गद्य शैली का प्रयोग पत्थरों का राजगढ में; संस्मरणात्मक शैली का 'डिठौना था उसका नाम' में, आत्मकथात्मक शैली का, 'नींबू मांगकर' में, संवाद शैली का 'कुल्हाडी' में, संबोधन शैली का 'यह विषय कठिन नहीं है' में, रिपोर्ट शैली का 'इस चमकदार जनतंत्र में सिर्फ जनता ही का नमोनिशान नहीं' में, व्यंग्य शैली का राष्ट्रीय पशुओं के बारे में, आँचलिक शैली का 'गाँव तो थूक नहीं सकता था मेरी हथेली पर में और फ्लैश बैक शैली का प्रयोग 'चकमक पत्थर' में किया है। हर रचना के विषय को ज़्यादा प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में ये शैलियाँ सार्थक बन पडी है।

देवतालेजी की बिम्ब योजना उनकी कविताओं के विचार पक्ष को संश्लिष्ट और सघन बनाती है। स्मृतियों का मूर्त चित्रण, गहरी संवेदना, और ऐन्द्रिय बोध का

भरमार उनके बिम्बांकन की विशेषतायें है। 'भूखण्ड तप रहा है', 'सिगपूर जैसा 'बनाने को बेताब', 'शाम को सडक पर एक बच्चा', बहाते हुए रोती हुई औरत', 'जहर की गाँठ कहाँ है', 'नागझिरी', बर्फ बेअसर, आदि कविताओं में समकालीन समाज की विभिन्न समस्याओं का बिम्बांकन है। औरत का संघर्ष, नष्ट हो रही ग्रामीण संस्कृति, उपभोगी दुनिया की झलक, संवेदनहीनता और मध्यवर्गीय परिवार का संघर्ष आदि ज्वलंत समस्याओं को कई बिम्बों के सहारे उन्होंने पाठक के अन्तकरण को झकझोरने का सफल प्रयास किया है।

देवतालेजी के प्रतीक-विधान अपने आप में सशक्त और सार्थक है। समकालीन समय के राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कई प्रतीकों का प्रयोग किये है। चीता, घोडा, आग, बाघ, आदि उनमें से कुछ प्रतीक है। 'लकडबग्घा हंस रहा है' प्रतीकात्मक ढंग से लिखित उनके सबसे उज्ज्वल कविता है। साम्राज्य शक्तियों के लिए, कपट राजनीतिज्ञों के लिए और सक्रिय क्रान्ती के लिए ही उन्होंने इन सारी प्रतीकों को चित्रित किये हैं।

देवतालेजी का सबसे पसन्दीदा रचनाकार है मुक्तिबोध उनके शोध-प्रबन्ध भी मुक्तिबोध पर आधारित है। आलोचकों का कहना है कि मुक्तिबोध का प्रभाव उनकी रचनाओं में कहीं कहीं नज़र आते हैं। उनके 'अँधेरे में' के सार्थक नकल है 'भूखण्ड तप रहा है' लम्बी कविता। फन्तासी के प्रयोग के ज़रिए तत्कालीन समाज के आर्थिक शोषण को, गरीबी और भूख को, भ्रष्टाचार को, और न्यायालयों के असमर्थता जैसी समस्याओं को उन्होंने चित्रित की है। दुर्घटना, देवी-वध जैसी कविताओं में भी कलाकार के संघर्ष और औरत के संघर्ष को फन्तासी के द्वारा उजागृत किये है।

इतिहास में वर्णित किसी पात्र या घटना को समकालीन समय में नये अर्थ देकर प्रस्तुत करने में देवतालेजी सफल हुए है। उनके यहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है नामक कविता में अश्वमेध यज्ञ को मिथक के रूप में चित्रित किया है। समय पर जीत हासिल करने की आधुनिक आत्मकेन्द्रित मानव के चाहत को कविता यहाँ पेश करती है।

शब्द चयन में उन्होंने अत्यंत सजगता दिखाई है। हिन्दी, उर्दू, अरबी, अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ मीडिया और सूचना प्रौद्योगिकी के शब्दावलियों का प्रयोग भी की है। आत्मकेन्द्रित मानव के उपभोगी और बाजारू मानसिकता दिखाने में सक्षम शब्दों का जैसे खरीदार, बिकाऊ, चमकती चीज़ों की पीठ पीछे, विज्ञापनों में डूबे अख्बार में हर दिन फोटू आदि शब्दावलियों का प्रयोग हुआ है। आंटले, दंमडी, टुच्चेपन, पुश्तैनी, तिकडी, जैसी स्थानीय शब्दों का प्रयोग भी उनके काव्य-भाषा को सार्थक बनाती है।

संदर्भ

1. रचना प्रक्रिया - उसके सपने - पृ. 27
2. गुंटर ग्रास को पत्र - पत्थर की बैच - पृ. 97
3. झूठ के दरवाज़े से निकलकर उजाड में संग्रहालय - पृ. 111
4. सुबह हमसे बाहर हो रही थी रोशनी के मैदान की तरफ - पृ. 10
5. राष्ट्रीय अफ़रा - तफ़री के महादृश्य में पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 137
6. थोडे से बच्चे - बाकी बच्चे - उसके सपने - पृ. 69
7. पत्थरों का राजगढ, दीवारों पर खून से पृ. 82
8. डिठौना था उसका नाम - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी पृ. 57
9. नींबू मांगकर - उजाड में अंग्रहालय - पृ. 96
10. कुल्हाडी - उजाड में संग्रहालय प. 55

11. सवाल जवाब - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 116
12. यह विषय कठिन नहीं है - आग हर चीज़ में बतायी गयी थी - पृ. 80
13. इस चमत्कार जनतंत्र में सिर्फ जनता ही का नमो निशान नहीं - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 162-163
14. (राष्ट्रीय पशुओं के बारे में - उजाड में संग्रहालय पृ. 48
15. नागझिरी - पत्थर की बैंच - पृ. 72
16. चकमक पत्थर (चकमक पत्तर - भूखण्ड व रहा है - पृ. 13
17. डॉ. पी.एफ. शेख रचनाकार चन्द्रकान्त देवताले - पृ. 112
18. चकमक पत्थर - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 18
19. सिंगापूर जैसा बनाने को बेताब - पत्थर फेंक रहा हुँ - पृ. 28
20. शाम को सडक पर एक बच्चा - लकडबघा हंस रहा है - पृ. 36-37
21. नहाते हुए रोती हुई औरत उसके सपने - पृ. 197
22. जहर की गाँठ कहाँ है - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 46
23. नागझिरी - पत्थर की बैंच - पृ. 70
24. बर्फ बेअसर - रोशनी के मैदान की तरफ - पृ. 11
25. चीने का जुकाम होने से -लकडबग्धा हंस रहा है - पृ. 44
26. वो पाँचों और हम सब - रोश्नी के मैदान की तरफ - पृ. 43
27. चकमक पत्थर - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 18
28. मई की विशाल छाती पर अग्निवृक्ष उडते है - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 84
29. लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 68
30. बाढ़ - लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 34
31. बाघ रणभम्बौर में क्लिंटन - पत्तर फेंक रहा हुँ - पृ. 148
32. थोडे से बच्चे और बाकी बच्चे - लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 78
33. दीवारों पर खून से - पृ. 70
34. डॉ. पी.एफ. शेख - रचनाकार चन्द्रकान्त देवताले - पृ. 113
35. देवी-वध - उजाड में संग्रहालय - पृ. 79
36. वही - पृ. 81
37. चकमक पत्थर, भूखण्ड तप रहा है - पृ. पृ. 13

38. दुर्घटना - लकडबग्घा हंस रहा है - पृ. 24-25
39. डॉ. शंभुनाथ मिथक और आधुनिक कविता - भूमिका से
40. यहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है - उजाड में संग्रहालय - पृ. 149
41. इस चमकदार जनतन्त्र में सिर्फ जनता ही का नमोनिशान नहीं पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 163
42. लेब्रेडोर - पत्थर की बैंच - पृ. 105
43. गाँव तो थूक नहीं सकता था मेरी हथेली पर - कवि ने कहा - पृ. 32
44. देवी वध - उजाड में संग्रहालय - पृ. 79
45. यमराज की दिशा - जहाँ थोडा सा सूर्योदय होगा - पृ. 154
46. बालम ककडी बेचेवाली लडकियाँ - वही - पृ. 90
47. चन्द्रकान्त देवताले - अमरिका गये प्रधानमंत्री - पत्थर फेंक रहाहूँ - पृ. 154
48. चन्द्रकान्त देवताले - बरखस्तगी से पहले - उसके सपने - पृ. 28
49. चन्द्रकान्त देवताले - बसंत, लकटबग्घा हंस रहा है - पृ. 23
50. चन्द्रकान्त देवताले - बुद्ध के देश में बुश - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 150
51. चन्द्रकान्त देवताले - जहाँ थोडा सा सूर्योदय होगा - पृ. 13
52. चन्द्रकान्त देवताले - सिर्फ तारीखें नहीं बदला करती समय - उजाड में संग्रहालय - पृ. 11
53. चन्द्रकान्त देवताले - भूखण्ड नप रहा है - पृ. 14
54. चन्द्रकान्त देवताले - नागसिरी - पत्थर की बेंच - पृ. 74
55. चन्द्रकान्त देवताले - एक दिन परेशान हो गई कमरे की चीज़ें, इतनी पत्थर रोशनी - पृ. 36
56. चन्द्रकान्त देवताले - आपकी तरह बोलने के लिए - पत्थर फेंक रहा हूँ - पृ. 95
57. चन्द्रकान्त देवताले - सुबह हमसे बाहर हो रही थी, रोशनी के मैदान की तरफ - पृ. 10
58. चन्द्रकान्त देवताले - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 29
59. चन्द्रकान्त देवताले - देवपुत्रों से हुई मुलाकात - पत्थर फेंक रहाहूँ - पृ. 128
60. चन्द्रकान्त देवताले - लकडबग्घा हंस रहा है - कवि ने कहा - पृ. 95

61. चन्द्रकान्त देवताले - नागझिरी - कवि ने कहा - पृ. 37
62. चन्द्रकान्त देवताले - मेरी किस्मत में यही अच्छा रहा - जहाँ थोडा सा सूर्योदय होगा - पृ. 244
63. चन्द्रकान्त देवताले - पत्थर की बैंच - कवि ने कहा - पृ. 111